इकाई 25 महाभारत का सांस्कृतिक महत्त्व

इकाई की रूपरेखा

25.0 उद्देश्य

25.1 प्रस्तावना

25.2 संस्कृति की परिभाषा, निर्माण–प्रक्रिया व महत्त्व

25.3 महाभारत का महत्त्व

- 25.3.1 महाभारत का सांस्कृतिक महत्त्व
- 25.3.2 पुरुषार्थ चतुष्ट्य
- 25.3.3 आचार–विचार
- 25.3.4 साहित्यिक एवं काव्य सौन्दर्य
- 25.3.5 धार्मिक एवं आध्यात्मिक महत्त्व
- 25.3.6 दार्शनिक महत्त्व
- 25.3.7 राष्ट्रीयता की भावना

25.4 कला परम्परा

- 25.4.1 शिल्पकला

25.5 सारांश

25.6 शब्दावली

25.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

25.8 बोध/अभ्यास प्रश्न

25.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

25.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आपको निम्नलिखित जानकारी प्राप्त होगी;

- 'संस्कृति' की परिभाषा;
- भारतीय संस्कृति की मुख्य विशेषताएँ;
- भारतीय संस्कृति में महाभारत की महत्ता;
- परवर्ती भारतीय संस्कृति को प्रवाहित करने में महाभारत की भूमिका;
- राष्ट्रीय भावना का विकास अथवा राष्ट्रीय एकीकरण में महाभारत का योगदान;
- नृत्य–संगीत एवं कला के विकास में महाभारत की भूमिकादि

25.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई का कार्य क्षेत्र महाभारत के सांस्कृतिक महत्त्व को स्पष्ट करना है। इस इकाई से हम यह समझने का प्रयास करेंगे कि महाभारत हमारी परम्पराओं और सांस्कृतिक उपलब्धियों का विश्वकोष है। विषय–वस्तु की विविधता और विपुलता के

कारण ही एक ओर पाश्चात्य विद्वान को महाभारत एक भयावह बीहड़ लगता है और इसे साहित्यिक राक्षस (literacy monster) की संज्ञा दे देते हैं[1]तो कुछ विद्वान इसे बर्बर नरसंहार (Epic of Genocide) के काव्य की संज्ञा देते हैं[2] तो अन्य इसके विकास–क्रम को ही मानवीय गरिमा के लिए घातक मानते हैं।[3] वहीं दूसरी ओर भारतीय दृष्टि है जो इसे पञ्चम वेद, अमर महाकाव्य, इतिहास और आख्यान के नाम से अभिहित करती है। शान्तरस प्रधान विराट् ग्रन्थराट् कहती है। आर्ष काव्य, उपजीव्य काव्य आदि अनेक संज्ञाओं से अभिहित करते हुए इसे देश के सर्वाङ्गीण संस्कृति का मूलाधार मानती है। इसीलिए स्वयं महाभारतकार ने भी कहा है कि महत्त्व और आकार की विशालता के कारण ही इसका नाम महाभारत पड़ा। मूलकथानक में कौरव–पाण्डव का इतिवृत तो है ही अपने विकासक्रम में इस महाकाव्य में उसके आख्यानों, संवादों के माध्यम से जीवन के विविध पक्षों यथा–लोक व्यवहार, अचार–विचार, धर्म–अध्यात्म, इतिहास–भूगोल, कला–साहित्य इत्यादि का समावेश स्वयं ही हो जाता है। इस इकाई में इन्हीं सन्दर्भों को ध्यान में रखते हुए भारतीय संस्कृति में महाभारत की महत्ता को समझने का प्रयास करेंगे।

25.2 संस्कृति की परिभाषा, निर्माण–प्रक्रिया व महत्त्व

संस्कृत भाषा में सम् उपसर्ग पूर्वक $\sqrt{कृ}$ धातु में क्तिन् प्रत्यय के योग से संस्कृति शब्द निष्पन्न होता है जिसका व्युत्पतिलभ्य अर्थ है 'परिष्कृत कार्य'। किन्तु इसका भावार्थ अथवा तात्पयार्थ अत्यन्त विस्तृत है। सामान्यतया एक निश्चित भू–भाग में रहने वाले मानव की जीवन शैली को संस्कृति के नाम से अभिहित किया जा सकता है। इस प्रकार संस्कृति मानव–जीवन के उन समस्त तत्त्वों के समष्टि का नाम है जिनका रहन–सहन बोल–चाल, खान–पान आचार–व्यवहार से प्रादुर्भुत होकर धर्म–दर्शन, ज्ञान–विज्ञान, कला–कौशल, साहित्य–समाज, राजनीति आदि में उसकी परिणति होती है। संस्कृति के स्वरूप के सन्दर्भ में भिन्न–भिन्न विद्वानों ने अपने विचार व्यक्त किए है। उनमें से कुछ को यहाँ प्रस्तुत करना समीचीन प्रतीत होता है।

के.एम. मुन्शी के अनुसार "हमारे रहन–सहन के पीछे जो हमारी मानसिक अवस्था या प्रकृति है जिसका उद्देश्य हमारे जीवन को परिष्कृत, शुद्ध और पवित्र बनाना है तथा अपने लक्ष्य की प्राप्ति करना है वही संस्कृति है। संस्कृति जीवन के प्रति हमारा दृष्टिकोण है।" डॉ. सम्पूर्णानन्द के मतानुसार "मानव का प्रत्येक विचार, प्रत्येक कृति संस्कृति नहीं है, पर जिन कार्यों से किसी देश–विशेष के समस्त समाज पर कोई अमिट छाप पड़े वह स्थायी प्रभाव ही संस्कृति है। संस्कृति वह आधारशीला है जिसके आश्रय से जाति, समाज व देश का विशाल भव्य प्रासाद (महल) निर्मित होता है।" डॉ. भगवानदास के शब्दों में मानसिक क्षेत्र में उन्नति की सूचक उसकी प्रत्येक सम्यक् कृति संस्कृति की अंगभूत हो जाती है। इसमें प्रधान रूप से ज्ञान–विज्ञान, धर्म–दर्शन, कला, साहित्य–समाज, अर्थनीति, राजनीति, संस्थाओं और प्रथाओं का समावेश होता है। ई. बी. टॉयलर के अनुसार "संस्कृति में समस्त ज्ञान, विश्वास, कलाऐं, नीति, विधि, रीतिरिवाज तथा वे सभी अन्य योग्यताएँ समाहित है जिन्हें मनुष्य किसी समाज के सदस्य होने के नाते अर्जित करता है।" मैथ्यु आर्नोल्ड के मत में विश्व में जो कुछ

[1] विण्टरनित्ज
[2] सं.सा.का स.इतिहास, त्रिपाठी
[3] बुइटेनेन

श्रेष्ठतम या उत्तमोत्तम जाना या कहा गया है उससे स्वयं को भिज्ञ कराना ही संस्कृति है। (Culture is the acquainting by ourselves with the best that has been known and said in the world). रामधारी सिंह दिनकर के अनुसार संस्कृति एक ऐसा गुण है जो हमारे जीवन में छाया हुआ है। यह एक आत्मिक गुण है जो मानव स्वभाव में ठीक उसी तरह व्याप्त है जिस तरह फूलों में सुगन्ध और दूध में मक्खन। इसका निर्माण एक–दो दिन में नहीं होता, युग–युगान्तर में होता है।" श्री हरिदत्त वेदालंकार ने संस्कृति निर्माण की प्रक्रिया को एक सुन्दर उपमान के द्वारा प्रस्तुत किया है– संस्कृति की तुलना आस्ट्रेलिया के निकट समुद्र में पाई जाने वाली मूँगे की भीमकाय चट्टानों से की है। जैसे मूंगे के असंख्य कीड़े अपने छोटे घर बनाकर समाप्त हो जाते हैं फिर नए कीड़े घर बनाते हैं उनका भी अंत हो जाता है। इसके बाद अगली पीढ़ी भी यही करती है और यह क्रम हजारों वर्षों तक निरन्तर चलता रहा। आज उन सब मूंगों के नन्हें–नन्हें घरों ने परस्पर जुड़ते हुए विशाल चट्टानों का रूप धारण कर लिया है। ठीक इसी प्रकार संस्कृति का भी निर्माण धीरे–धीरे हजारों वर्षों में होता है। मानव विभिन्न स्थानों पर रहते हुए विशेष प्रकार के सामाजिक वातावरण, संस्थाओं, प्रथाओं, व्यवस्थाओं, धर्म, दर्शन, लिपि, भाषा, कला का विकास करके अपनी विशिष्ट संस्कृति का निर्माण करते है। भारतीय संस्कृति की भी इसी प्रकार रचना हुई है।"[4] इस प्रकार किसी देश की संस्कृति उसकी सम्पूर्ण मानसिक निधि को सूचित करती है और यह किसी एक व्यक्ति के पुरुषार्थ का प्रतिफल न होकर असंख्य ज्ञात–अज्ञात व्यक्तियों के भगीरथ प्रयत्न का परिणाम है।[5] इसी प्रकार संस्कृति के महत्त्व को स्पष्ट करते हुए शिवदत्त ज्ञानी जी ने लिखा है कि किसी समाज, जाति अथवा राष्ट्र के समस्त व्यक्तियों के उदात्त संस्कारों के पुँज का नाम उस समाज, जाति और राष्ट्र की संस्कृति है। किसी भी राष्ट्र की शारीरिक, मानसिक व आत्मिक शक्तियों का विकास संस्कृति का मुख्य उद्देश्य है।[6] इस उद्देश्य की पूर्ति में जो संस्कृति जितना अधिक योगदान करेगी वह संस्कृति उतनी ही उत्तम या श्रेष्ठ कहलाएगी और यह उत्कर्ष मानव बुद्धि, शिक्षा, संस्कारादि के सहयोग से प्राप्त करता है। अतः स्पष्ट है कि संस्कृति का संबंध मानवीय बुद्धि, स्वभाव और उसके मनोवृत्तियों से होता है।

25.3 महाभारत का महत्त्व

महाभारत का विकास जय, भारत तथा महाभारत इन तीन रूपों में तीन विविध उद्देश्यों की पूर्ति हेतु अलग–अलग अवसरों पर हुआ है। महाभारत का मूल रूप 'जय संहिता' के नाम से जाना जाता है– **जयो नामेतिहासोऽयं श्रोतव्यो विजिगीषुणा।** (महा. 1/62/20) महर्षि वेदव्यास ने इस ग्रन्थ की रचना कौरवों के ऊपर पाण्डवों के विजय–वृत्त को आधार बनाकर किया था जिसे उन्होंने अपने शिष्य वैशम्पायन को सुनाया था। इसमें कुल 8800 श्लोक थे और धर्मचर्चा या अधर्म पर धर्म की विजय का वर्णन इसकी मुख्य विषय–वस्तु थी। द्वितीय अवस्था में जय संहिता का विस्तार 'भारत' के रूप में हुआ। इसमें 24000 श्लोक थे। वैशम्पायन ने जनमेजय के समक्ष नागयज्ञ के अवसर पर 'भारत संहिता' का प्रवचन किया था। संक्षिप्त मूलकथा अर्थात् जय संहिता से विकसित होती हुई अपनी अन्तिम अवस्था में महाभारत ग्रन्थ (शतसहस्त्री संहिता) एक लाख से भी अधिक श्लोकों के रूप में प्रतिष्ठित हुई। इसे नैमिषारण्य

[4] भारतीय संस्कृति का संक्षिप्त इतिहास, पृ. 4
[5] वही
[6] शिवदत्त ज्ञानी, भारतीय संस्कृति, पृ. 17

(वर्तमान में सीतापुर जनपद, उत्तर प्रदेश) के यज्ञ में सौति नामक ऋषि ने शौनकादि ऋषियों को सुनाया। साथ ही जिज्ञासुओं के जिज्ञासाओं का समाधान भी किया। परिणामस्वरूप अपने अन्तिम अवस्था वाले ग्रन्थ महाभारत में कौरव–पाण्डवों का इत्तिवृत्त तो मूल कथानक के रूप में है ही साथ ही अनेक संवादों के बहाने धर्म–अध्यात्म, इतिहास–भूगोल, आख्यान–कथा, आचार–विचार दर्शनादि समस्त, सांस्कृतिक विषयों का भी समावेश इसमें हो गया। इस तरह महाभारत अपने विशाल कलेवर में हमारी परम्पराओं और सांस्कृतिक उपलब्धियों का बृहत इतिहास प्रस्तुत करता है। यह विश्व साहित्य का सबसे बड़ा महाकाव्य तो है ही इसे सांस्कृतिक दृष्टिकोण से विश्व का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ भी कहा जा सकता है। विषय–वस्तु की विविधता और विपुलता के कारण ही इस ग्रन्थ को 'महाभारत' के नाम से अभिहित किया गया है– **महत्त्ववाद् भारवत्वाच्च महाभारतम् उच्यते** (महा. 1/1/274)। महाभारत ग्रन्थ की महत्ता को स्पष्ट करते हुए डिस्कवरी ऑफ इण्डिया में पंडित जवाहर लाल नेहरू ने लिखा है कि महाकाव्य की दृष्टि से रामायण एक विशाल ग्रन्थ है तथा जनता को उससे अत्यधिक प्रेम है परन्तु यह महाभारत है जो वास्तव में दुनिया के सबसे प्रमुख ग्रन्थों में से एक है। यह एक महान रचना है। भारतीय परम्पराओं, गाथाओं, राजनीतिक और सामाजिक संस्थाओं का यह एक विशाल कोष है।"[7] इन्हीं सब विन्दुओं को ध्यान में रखकर अब हम महाभारत की सांस्कृतिक महत्त्व को समझने का प्रयास करेंगे।

25.3.1 महाभारत का सांस्कृतिक महत्त्व

जैसा कि हम देख चुके हैं कि महाभारत सिर्फ कौरवों और पाण्डवों के युगान्तकारी युद्ध का ही इतिहास नहीं है बल्कि इसे हमारी साहित्य–संस्कृति, समाज, धर्म, राजनीति आदि का प्रतिनिधि ग्रन्थ होने का गौरव प्राप्त है। भले ही इस अमर ग्रन्था का प्रारम्भ युद्ध वर्णन के क्रम में वीर रस प्रधान काव्य की रचना के रूप में हुई हो किन्तु कालक्रम से यह अपने वैविध्यपूर्ण संस्कृति के महासागर के रूप में शान्त रस प्रधान महाकाव्य के रूप में परिवर्तित हो गया। कपिलदेव द्विवेदी का कहना है कि महाभारत में परस्पर विरोधी गुणों का समावेश है। इसमें विरूपता में एकरूपता, अनेकता में एकता, विशृंखलता में समन्वय, व्यवहार में आदर्श, अशान्ति में शान्ति, प्रेय में श्रेय और धर्मार्थ में मोक्ष का समन्वय है।[8] अस्तु, महाभारत के सांस्कृतिक महत्व के अनगिनत पक्ष है, परन्तु इकाई की मर्यादानुसार यहाँ हम कुछ महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं को ध्यान में रखकर गागर में सागर भरने का प्रयास करेंगे।

25.3.2 पुरुषार्थ चतुष्ट्य

महाभारतकार ने आदिपर्व में स्वयं कहा है कि धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष– जीवन के इन चार पुरुषार्थ के विषय में इस ग्रन्थ में जो कहा गया है वही अन्यत्र भी मिलेगा परन्तु जो महाभारत में नहीं है वह अन्यत्र कहीं भी नहीं मिलेगा– धर्मे चार्थेकामे च मोक्षे च भरतर्षभ।

[7] नेहरू, भारत एक खोज
[8] कपिलदेव द्विवेदी, सं.सा. का सं. इतिहास, पृ. 128

यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्क्वचित्।।

(महा. आदि. 1/62/53

वैशम्पायन ने इसकी प्रशस्ति में कहा है कि महाभारत धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, कामशास्त्र और मोक्षशास्त्र है।[9] महाभारत में धर्म को धारणाद्धर्मः तथा आचारलक्षणः के रूप में परिभाषित किया गया है।[10] सामान्य धर्म, विशिष्ट धर्म, आपद्धर्म इस तरह धर्म के विविध रूपों की चर्चा भी महाभारत में है। करुणा, सत्य, अहिंसा, तपादि सामान्य धर्म है। इनका पालन सभी मनुष्यों को सभी परिस्थितियों में करना चाहिए। विशिष्ट धर्म के भी कई प्रकार हैं यथा– वर्णाश्रम धर्म, कुलधर्म, स्त्रीधर्म, राजधर्म, युगधर्मादि। वहीं आपद् धर्म, यूँ तो अधर्म के रूप में होता है किन्तु विपत्तिकाल में धर्म का रूप ले लेता है, अस्तु पालनीय हो जाते हैं।[11] धर्म का त्याग किसी भी परिस्थिति में नहीं करना चाहिए। अपने धर्म के लिए प्राण त्यागने में भी संकोच नहीं करना चाहिए।[12] धर्म को अवसरानुरूप परिवर्तित करने का विधान भी महाभारत में वर्णित हैं। सज्जन के साथ सज्जनता तथा कपटी के कपट का व्यवहार भी धर्म ही है।[13] इस तरह महाभारत का धर्म परिवर्तनशील ही नहीं अपितु प्रगतिशील भी है। धन की महिमा का वर्णन भी महाभारत में भरा पड़ा है। धन को परमधर्म कहा गया है और निर्धन के जीवन को मृत्युतुल्य माना गया है।[14] शान्तिपर्व में स्पष्टतः कहा गया हे कि धन से कुल, धर्मादि सम्पन्न होते हैं। धनाभाव में जीवन चल ही नहीं सकता।[15] धनहीन व्यक्ति की सभी क्रियाएँ विच्छिन्न हो जाती हैं।[16]

काम को भीष्म ने मानव जीवन की सहज प्रवृत्ति के अर्थ का फल कहा है **'कामोऽर्थफलमुच्यते'**। उन्होंने धर्म को श्रेष्ठ, अर्थ को मध्यम एवं काम को दोनों से अधम माना है।"[17] धर्म का अंकुश काम पर लगाने का निर्देश महाभारत में यत्र–तत्र सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। श्रीमद्भगवद्गीता स्पष्टतः कहती है कि धर्ममूलक काम न होने पर वह सर्वनाश का कारण भी बन जाता है।[18] यद्यपि गीता जीवन की गतिशीलता के लिए काम को आवश्यक मानती है तथापि 'काम' पर संयम की वह उपदेश देती है क्योंकि इसके अभाव में चतुर्थ पुरुषार्थ अर्थात् मोक्ष व्यक्ति से दूर हो जाता है।[19] धार्मिक जीवन, वैराग्य, संन्यासादि का लक्ष्य मोक्ष ही है जिसमें आत्मा की सांसारिक बंधनों से आत्यन्तिक निवृत्ति होती है और वह अपने मूल रूप में अवस्थित

---

[9] धर्मशास्त्रमिदं पुण्यमर्थशास्त्रमिदं परम्।
मोक्षशास्त्रमिदं प्रोक्तं व्यासेनामितबुद्धिनाङ्क (महा. 1/62/23)
पाठान्तर – 1/2/32832 दृ कामशास्त्रमिदं प्रोक्तंम्।

[10] उमाशंकर शर्मा, संस्कृत सा. का इतिहास, पृ. 162

[11] न जातु कापान्न भ्यान्न लोभाद,
धर्म त्यजेजीवतस्यापि हेतोः। महा. स्वर्ग. पर्व (5/63)

[12] स्वधर्मे निधनं श्रेयः परमधर्मो भयावहः (गीता 3/35)

[13] यस्मिन्यथा वर्तते यो मनुष्यस्तरिस्मन्स्तथा कवितव्यं स धर्मः।
मायाचारो मायया वर्तितव्यः साध्वाचारः साधुना प्रत्युपेयः।।5/37/7

[14] धनमाहुः परं धर्मं धने सर्वं प्रतिष्ठितम्।
जीवन्ति धनिनो लोक मता ये त्वधना नराः।। महा. उ. पर्व 5.71.31

[15] प्राणायात्रापि लोकस्यर्विनः ह्यर्थं न सिध्यति। महा. शा. 8/17

[16] वही. विच्छिद्यन्ते क्रियाः सर्वाः ग्रीष्मे कुसरितो यथा। 8/18

[17] धर्मो राजन् गुणः श्रेष्ठो मध्यानो ह्यर्थ उच्यते।
कामो यवीयानिति च प्रवदन्ति मनीषिणः।। (महा. 21/1.8/167)

[18] गीता 2/62–63

[19] वही, 2/44

हो जाता है। मोक्ष की प्रतिष्ठ को स्थापित करने के लिए महाभारत रूपी महासागर में अनेक गीताओं का समावेश किया गया है। यथा– श्रीमद्भगवद्गीता (भीष्मपर्व– 25–42) पराशर गीता (शान्तिपर्व 290–98), हंसगीता (शान्तिपर्व 299), ब्राह्मणगीता (आश्वमेधिक पर्व 20–34), अनुगीता (आश्वमेधिक पर्व 16–19) इत्यादि। अनुगीता में तो मोक्ष को 'अमृत' कहा गया है।[20] मोक्ष–प्राप्ति के उपायों में ज्ञान, कर्म, भक्ति आदि की चर्चा की गई है और श्रीमद्भगवद्गीता में इन सबका अद्भूत समन्वय किया गया है।

25.3.3 आचार–विचार

मानव जीवन का ऐसा कोई भी विषय नहीं है जिससे सम्बन्धित आचार विषयक उपदेश महाभारत में उपलब्ध न हो। महर्षि वेदव्यास के अनुसार भारतीय संस्कृति आर्जव या ऋजुभाव यानि स्पष्ट कथन तथा सीधे–सादे आचरण को मानव जीवनोपयोगी मानती है। वह टेढ़े–मेढ़े मार्ग (जिह्म मार्ग) को मृत्यु का रूप बतलाती है तथा प्राणियों को इससे दूर रहने का उपदेश देती है।[21] महाभारत कर्मवादी है।[22] मानव को अपने किये कर्म का ही फल भोगना पड़ता है। अकृत कर्म का नहीं। सुख पाने के लिए सदा शुभ कर्म ही करना चाहिए।[23] महाभारत अपने आख्यानों के द्वारा कहीं मित्रसम्मित उपदेश तो धर्मशास्त्र के रूप में कहीं प्रभु सम्मित उपदेश देती है। शान्ति पर्व में राजा के कर्त्तव्य का निर्देश किया गया है जबकि अनुशासन पर्व तो आचार–विचार का भण्डागार ही प्रतीत होता है। यहाँ वर्णाश्रमों के कर्त्तव्य, पाप–पुण्य का विभाजन, भाग्य और परिश्रम का तारतम्य, कन्या–विवाह, पात्रापात्र का विचार जैसे आचार–विचार के विषय भरे पड़े हैं।[24]

25.3.4 साहित्य एवं काव्य सौन्दर्य

रामायण और महाभारत संस्कृत वाङ्मय का आर्ष व उपजीव्य ग्रन्थ है जिसका अनुकरण परवर्ती सभी लेखकों व कवियों ने किया है। इकाई 24 में इसे हम देख चुके हैं। भारतीय काव्यशास्त्र की आधारशिला भी रामायण तथा महाभारत के द्वारा ही निर्मित है। आनन्दवर्धनाचार्य ने तो स्पष्टतः कहा है कि ध्वनिसिद्धान्त की सारी कल्पना उन्होंने वाल्मीकि और वेदव्यास जैसे महान् कवियों के अभिप्रायानुसार ही की है[25] और उन्होंने महाभारत के पद्यों को खुले मन से उद्धृत भी किया है। महाभारत में विभिन्न प्रकार के शैलियों का प्रयोग भी मिलता है क्योंकि इसमें प्रतिपाद्य विषयों का बाहुल्य है। इसमें एक ओर अत्यन्त प्रौढ़ व परिष्कृत रसभाव समन्वित शैली प्राप्त होती है तो दूसरी ओर किसी भी गम्भीर से गम्भीर विषय को अत्यन्त ही रोचक, सरल व सहज बनाकर किस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है यह भगवद्गीता, विदुर गीतादि में देखा जा सकता है। इस

---

[20] पराद्वि सा गतिः पार्थ यत्तद् ब्रह्म सनातनम्।
यत्रामृतत्वं प्राप्नोति व्यक्त्वा देहें सदा सुखी।।
(महा. अश्व. पर्व 19/60)

[21] सर्वं जिह्मे मृत्युपदमार्जवं ब्रह्मणः पदम्।
एतावान् ज्ञानविषयः किं प्रलापः करिष्यति।। (महा. अश्व. 11/4)

[22] उपदेशेन वर्तामि नानुशास्मीह कञ्चन। (वही, शां.प. 178/6)

[23] शुभेन कर्मणः सौख्यं दुःखं पापेन कर्मणा।
कृतं फलति सर्वत्र नाकृतं भुज्यते क्वचित् (महा. अनु. 6/22210)

[24] यथा बीजं विना क्षेत्रमुप्तं भवति निष्फलम्।
....क्षेत्रबीजसमायोगात् ततः सस्यं समृद्ध्यते।। (महा. अनु. 6/7–8)

[25] वाल्मीकिव्यसमुख्याश्च ये प्रख्याताः कवीशवराः।
तदभिप्रायबाह्योऽयं नास्माभिर्दर्शितो नयः।। (ध्वन्यालोक 3.19)

प्रकार आदि पर्व में प्राचीन गद्य का भाष्य प्रासाद प्राप्त होता है। 'द्रौपदी स्वयंवर' द्रौपदी के स्वयंवर में लक्ष्यवेध करने वाले राजाओं का वर्णन अलंकार समन्वित है।[26] महाभारत की उपमाओं में परिकल्पना की नवीनता दृष्टिगोचर होती है यथा– **इन्द्रध्वज इवोत्सृष्टो यन्त्रनिर्मुक्तबन्धनः** (7.67.12) इसीप्रकार नीतिपूर्ण श्लोकों में विशुद्धोक्ति मिलती है।[27] इसी तरह महाभारत की भाषा में सरलता, रोचकता का अत्यन्त ही हृदयावर्जक प्रवाह देखने को मिलता है। सहज प्रवाह में कहीं–कहीं समासपूर्ण पद्य भी आ गए हैं जो परवर्ती काव्यशैली के उपजीव्य भी हैं।[28] काव्यात्मक स्थलों में उपजाति, वंशस्थादि छन्दों का प्रयोग भी महाभारत में प्रचुर मात्रा में प्राप्त होता है।[29] काव्यशास्त्र के अनेक आचार्यों ने महाभारत के अनेक पद्य को, रस, भाषादि के उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किये है। यथा– भूरिश्रवा के विधवा पत्नी के विलाप को आनन्दवर्धन तथा मम्मट ने गुणीभूत व्यंग्य के रूप में उद्धृत किया है।[30] इसी तरह महाभारत में चन्द्रमा के सुन्दर वर्णन को भी काव्यशास्त्रियों ने खूब सराहा है।[31] महाभारत के गृध्रगोमायु संवाद का विवेचन आनन्दवर्धन, अभिनवगुप्त, मम्मटादि आचार्यों ने किया है। आनन्दवर्धन तथा अभिनव गुप्त इस प्रकरण को रसोद्रेक की दृष्टि से सुन्दर मानते हैं। अभिनवगुप्त इसका पर्यवसान शान्त रस में मानते हैं, जबकि मम्मट इसे प्रबन्ध की दृष्टि से अत्यधिक रमणीय मानते हैं।[32]

25.3.5 धार्मिक एवं आध्यात्मिक महत्त्व

लौकिक–संस्कृति के दोनों महाकाव्य रामायण और महाभारत परवर्ती साहित्य को बहुत अधिक प्रभावित करता है– विषय–वस्तु या कथाओं के उपजीव्य के रूप में भी और प्रतिपादन या वर्णन शैली के रूप में भी किन्तु दोनों ही महाकाव्य को धार्मिक–कोटि के ग्रन्थ के रूप में स्थान प्राप्त है। एक आदिकाव्य कहलाता है तो दूसरा पुराणेतिहास। वास्तव में देखा जाए तो महाभारत में शैव और वैष्णव दोनों सम्प्रदायों में समन्वय दिखाई पड़ता है। इसमें शैव और वैष्णव दोनों सम्प्रदायों के सहस्त्रनाम स्तोत्र एक ही अनुशासन पर्व में प्राप्त होते हैं जिनका पाठ क्रमशः शैव और वैष्णव भक्तगण प्रतिदिन करते हैं।[33] आजकल सम्पूर्ण महाभारत का पाठ तो कोई नहीं करता किन्तु इनके कुछ प्रमुख भागों को आध्यात्मिक महत्त्व के कारण अत्यन्त उत्कृष्ट मानकर उनका पाठ सभी लोग करते हैं। जैसे– श्रीमद्भगवद्गीता, गजेन्द्र मोक्ष, अनुगीता, अष्टावक्र गीता, भीष्मस्तवराज स्तोत्र आदि। कपिल द्विवेदी के अनुसार महाभारत का वास्तविक सांस्कृतिक महत्त्व भगवद्गीता के कारण है। हम सभी जानते हैं कि गीता महाभारत के भीष्मपर्व का ही एक अंश है किन्तु विद्वानों के अनुसार महाभारत की अपेक्षा गीता का धार्मिक, आध्यात्मिक या दार्शनिक महत्त्व अधिक रहा है क्योंकि प्राचीन

---

[26] रूपेण वीर्येण कुलेन चैव शीलेन वित्तेन च यौवनेन।
समिद्धदर्पा मदवेगभिन्ना मत्ता यथा हैमवता गजेन्द्राः।। (महा. आदि. 186/21)

[27] सुलभाः पुरुषा राजन् सततं प्रियवादिनः।
अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः।। (महा. उद्योग. 37/15)

[28] धव–ककुभ–कदम्ब–नारिकेलैः कुरबक–केतक–जम्बुपाटलाभिः।
वट–वरुणक–वत्सनाभबिल्वैः सरलकपित्थप्रियालसालतालैः।। (महा. अनु. 14/53)

[29] सं. सा. का इतिहास, उमाशंकर शर्मा 'ऋषि', पृ. 166

[30] अयं स रशनोल्कर्षी पीनस्तनविमर्दनः।
नाभ्यूरूजघनस्पर्शी नीवीविस्त्रंसनः करः।। मम्मट का. प्र.

[31] ततः कुमुदिनीनाथेन कामिनीगण्डपाण्डुना।
नेत्रानन्देन चन्द्रेण माहेन्द्री दिगलङ्कृता।। (महा. 7.159.42)

[32] मम्मट का. प्र. चतुर्थ उल्लास– 93–96

[33] शिवसहस्त्रनाम स्तोत्र, अध्याय–17, अनुशासन पर्व एवं विष्णुसहस्त्रनाम स्तोत्र, अध्याय 149, अनुशासन पर्व

काल के जितने भी धार्मिक दार्शनिक सम्प्रदाय हुए उन सबके प्रवर्तक आचार्यों ने अपने–अपने सम्प्रदाय की प्रतिष्ठा के लिए प्रस्थानत्रयी (गीता, उपनिषद् और ब्रह्मसूत्र) पर भाष्य अवश्य लिखा है। अर्थात् प्राचीन भारतीय धार्मिक/दार्शनिक सम्प्रदायों के लिए उपनिषद, गीता और ब्रह्मसूत्र ऐसे आधार ग्रन्थ रहे हैं जिनकी मुहर लगे बिना समाज में वह मत प्रतिष्ठापित नहीं हो सकता। इस प्रकार भारतीय संस्कृति के लिए गीता न केवल आचार संहिता है अपितु वेद के समकक्ष एक धर्मग्रन्थ है। अस्तु, गीता आर्य धर्म को समन्वित एवं सूत्रबद्ध करने वाली शृंखला है।[34] आचार्य बलदेव उपाध्याय के अनुसार महाभारत हमें सुखद तथा नियमित जीवन बिताने की शिक्षा देती है।[35] मनुष्य का आध्यात्मिक कल्याण इन्द्रिय–निग्रह से ही होता है।[36] महर्षि वेदव्यास का यह सारगर्भित कथन है कि वेद का उपनिषद् या रहस्य सत्य है और सत्य का रहस्य–दम तथा दम का रहस्य मोक्ष है। महाभारत के समग्र अध्यात्म शास्त्र का यही निचोड़ है।[37]

महाभारत में इस ग्रन्थ के पाठ के प्रचुर फल भी निरूपित है। इसके विषय में कहा गया है कि महाभारत के श्रवणमात्र से ही ज्ञाताज्ञात समस्त पापकर्मों का नाश हो जाता है।[38] स्वयं महाभारतकार महर्षि वेदव्यास महाभारत के धार्मिक महत्त्व को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि महाभारत के ज्ञान के बगैर सभी शास्त्रों का ज्ञाता भी विद्वान नहीं कहला सकता है।[39] वास्तव में महाभारत का धार्मिक प्रभाव न केवल सम्पूर्ण भारत में ही था अपितु भारत वर्ष के बाहर कंबोडिया, बाली, जावा, सुमात्रादि देशों में भारतीय संस्कृति के व्यापक प्रचार–प्रसार में महाभारत का अमूल्य योगदान रहा है। कम्बोज–प्रदेश के एक अभिलेख में रामायण तथा महाभारत के निरन्तर पाठ की व्यवस्था की सूचना मिलती है।[40]

25.3.6 दार्शनिक महत्त्व

महाभारत को शास्त्र और काव्य का समन्वित रूप माना जाता है। दर्शन के गूढ़ रहस्यों को यहाँ काव्य की मधुर शैली में प्रस्तुत किया गया है। हम सभी यह भलीभाँति जानते हैं कि महाभारत के कतिपय लोकप्रिय अंश स्वतंत्र ग्रन्थ के रूप में समाज में प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके हैं यथा– सनत्सुजातीय अंश, श्रीमद्भगवद्गीता, अष्टावक्र गीता, अनुगीता, गजेन्द्र मोक्ष आदि ये सबके सब उदात्त दार्शनिक चिन्तन से भरे पड़े हैं। यद्यपि महाभारत के दार्शनिक प्रकरणों में सर्वत्र सांख्य–योग या द्वैतवाद का सम्यक् सांख्य योग या द्वैतवाद का सम्यक् विवेचन है तथापि सनत्सुजातीय (महा. 5/41–46) जैसे लम्बे अंशों में शुद्ध वेदान्त का विवरण है। श्रीमद्भगवद्गीता में आध्यात्मिक जीवन के विविध पक्षों का तो निरूपण है ही अन्य ग्रन्थों में भी मोक्ष, वैराग्य जैसे गम्भीर दार्शनिक विषय की महत्ता प्रतिपादित है। वास्तव में, गीता से किसी भी दार्शनिक ग्रन्थ की तुलना नहीं की जा सकती है। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो शंकर, रामानुज,

---

[34] सं.सा. का समीक्षा इतिहास, कपिलदेव द्विवेदी, पृ. 127
[35] सं.सा. का इतिहास, बलदेव उपाध्याय, पृ. 107
[36] आत्मनस्तु क्रियोपायो नान्यत्रेन्द्रिय–निग्रहात। (महा. उद्यो. 63/17)
[37] वेदस्योपनिषद् सत्यं सत्यस्योपनिषद दमः।
दमस्योपनिषद् मोक्ष एतत् सवौनुशासनम्।। (महा. शान्ति. 299/13)
[38] महाभारत 1/62/38–39
[39] वही., 1/2/382
[40] सं.सा. का इतिहास, उमाशंकर शर्मा ऋषि, पृ. 165

निम्बाक्र, मध्व, वल्लभादि आचार्यों ने अपने–अपने मतानुसार गीता पर भाष्य लिखकर प्रत्येक ने अपने–अपने सम्प्रदाय को प्रतिस्थापित करने का प्रयास किया है।

शंकराचार्य के पूर्व के टीकाकारों ने महाभारत की पद्धति के अनुसार ही गीता का अर्थ ज्ञान–कर्म समुच्चयात्मक रूप में किया है। यद्यपि इस प्राचीन टीकाकारों की वृत्तियाँ अब उपलब्ध नहीं है किन्तु इनका उल्लेख शंकर ने अपने गीता–भाष्य में किया है। आचार्य शंकर ने इस ज्ञान–कर्म–समुच्चयात्मक वैदिक कर्मयोग का खण्डन कर दूसरे की दृष्टि से गीता का भाष्य किया है। उनके अनुसार प्रवृत्ति–प्रधान कर्मों को करने से ज्ञान की प्राप्त नहीं हो सकती। संक्षेपतः शंकरचार्य के अनुसार गीता का सार यह है कि निवृत्ति–प्रधान संन्यास ज्ञान से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है। शंकराचार्य के अद्वैतवाद या मायावाद के सिद्धान्त को खण्डित कर एक चिद् विशिष्ट ईश्वर का प्रतिपादन करके रामानुजाचार्य ने भागवत धर्म के अनुसार विशिष्टाद्वैत नामक एक नये सम्प्रदाय को जन्म दिया। इसी तरह निम्बाक्र ने द्वैताद्वैत सम्प्रदाय को प्रतिष्ठापित किया। निम्बार्काचार्य के अनुसार यद्यपि जीव, जगत् और ईश्वर तीनों भिन्न हैं तथापि जीव और जगत् का समग्र व्यापार ईश्वर के अधीन होने से वे स्वतन्त्र नहीं है। वहीं द्वैत सम्प्रदाय के प्रवर्तक आनन्दतीर्थ मध्वाचार्य ने अपने गीताभाष्य में भक्ति को ही अन्तिम निष्ठा बतलाया है। उनके मतानुसार भक्ति की सिद्धि हो जाने पर कर्म करने की आवश्यकता नहीं रहती। इसी प्रकार शुद्धाद्वैत सम्प्रदाय के प्रवर्तक बल्लभाचार्य ने गीता धर्म को निवृत्तिविषयक पुष्टिमार्गीय भक्ति कहा है। उनके मतानुसार भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को पहले सांख्य और कर्म का उपदेश दिया और अन्त में भक्ति का अमृत मिलाकर पूर्ण किया। अनुग्रहपूर्वक भक्ति ही गीता का अभीष्ट विषय है।

इस प्रकार भिन्न–भिन्न सम्प्रदायों के भिन्न–भिन्न आचार्यों ने अपने–अपने मतानुसार गीता पर जो भाष्य व टीकाएं लिखी हैं उनके अध्ययन से हमें गीता के गौण उद्देश्य का पता भर ही लग सकता है। उपनिषदों के अद्वैत वेदान्त के साथ भक्ति का सामंजस्य स्थापित करके बड़े–बड़े कर्मवीरों के चरित और उनके जीवन की क्रमिक उत्पत्ति बताना ही गीता का प्रमुख उद्देश्य है। यानि ज्ञान–भक्तियुक्त कर्मयोग जैसे उदात्त विषय का प्रतिपादन करना ही गीता का वास्तविक लक्ष्य है। इस प्रकार महाभारत का मुख्य प्रतिपाद्य तो दर्शन है जो मोक्ष में परिणत होता है, अन्य विषय तो औपचारिक मात्र हैं। तभी तो परमात्मा की व्यापकता का वर्णन करते हुए शान्तिपर्व में भीष्म कहते हैं–

यस्मिन् सर्वं यतः सर्वं यः सर्वं सर्वतश्च यः।
यश्च सर्वमयो देवतस्तमै सर्वात्मने नमः।। (महा. शा. पर्व 46/86)

भीष्म ने अनुशासन पर्व में काल की महिमा पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि संसार की सारी गतिविधियाँ काल के कारण होती है। इस युद्ध में काल ने राजाओं का विनाश किया है, किसी दूसरे पर दोषारोपण करना व्यर्थ है। (महा. अनु. 1/82)

25.3.7 राष्ट्रीयता की भावना

आचार्य बलदेव उपाध्याय ने महाभारत की राष्ट्रीय भावना को बड़ा ही उदात्त, विशुद्ध और ओजस्विनी माना है। राजा राष्ट्र का केन्द्र होता है। भारतीय राजा लोकतन्त्र के अधिनायकों के दुर्गुणों के साथ–साथ स्वेच्छाचारी राजाओं के दोषों से भी मुक्त होते

हैं। राजा प्रजा का सर्वभावेन हितचिन्तक तथा मंगलसाधक होता है। वस्तुतः भारतीय धर्म ही राजमूलक है। अर्थात् धर्म की व्यवस्था–संचालन का दायित्व राजा पर ही होता है। राजा प्रजा का पालन न करे तो विश्व को धारण करने वाला धर्म ही रसातल में डूब जाएगा।[41] आगे भी कहा गया है कि राजनीतिक नेता के लिए महाभारत एक विलक्षण आदर्श उपस्थित करता है जो आज भी उतने ही सुन्दर रूप से अनुकरणीय तथा ग्राह्य हैं। व्यास जी ठीक ही कहते हैं कि किसानों का नेता किसान ही हो सकता है। कृषि से अनभिज्ञ कुर्सीतोड़ बकवादी नेता किसानों का भला नहीं कर सकता है।[42]

25.4 महाभारत और कला

प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी ने ठीक ही कहा है कि महाभारत प्राचीन भारतीय इतिहास में नाट्य के उद्भव और विकास की अनेक कड़ियों को जोड़ते हुए भरतमुनि के पूर्व की रंग परम्परा का महत्त्वपूर्ण साक्ष्य प्रस्तुत करता है। भारतीय रंगमंच के विविध प्रस्थानों पर महाभारत से हमें अनेक महत्त्वपूर्ण सूचनाएं प्राप्त होती है– यथा– प्रेक्षागृह, नट–नर्तक, समाज, ग्रंथिक जवनिका, नाट्यप्रयोग, अभिनय, संगीत, पुत्तलिकानाट्य, छायानाट्य, नाट्य का भूलोक पर अवतरणादि। प्रेक्षागार का उल्लेख महाभारत में अनेक स्थलों पर हुआ है। विराट पर्व में नर्तनशाला का भी उल्लेख मिलता है। स्वयंवर, उत्सवादि के अवसर पर समाज का आयोजन होता था। समाज उस समय नृत्य, नाट्यादि का आयोजन करने वाली महत्त्वपूर्ण संस्था थी और समाज में सम्मिलित होने वाले लोगों को सामाजिक कहा गया। आगे चलकर नाट्यशास्त्र और रसविवेचन की परम्परा में सामाजिक शब्द का प्रयोग प्रेक्षक या सहृदय के लिए हुआ है।[43] महाभारत स्वर्ग से नाट्य के भूलोक पर अवतरण की परम्परा को स्वीकार करता है। यह अवतरण नाट्य–शास्त्र में भी प्राप्त होता है।[44] यज्ञ या याज्ञिक अनुष्ठानों से नाट्य और नृत्य का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। महाभारतानुसार युधिष्ठिर के अश्वमेध यज्ञ में नृत्य, संगीत, इत्यादि के आयोजन हुए थे।[45] सूत यज्ञवेदिका के निर्माण हेतु सूत्र लेकर आता था। इसलिए उसे सूत्रधार भी कहा गया है। यही सूत्र या सूत्रधार नाटक का भी सूत्रधार कहलाया।[46] महाभारत के अनुसार राजसभा में पुरोहित नान्दी पाठ करते थे। नाटकों में नान्दी पाठ की परम्परा पुरोहितों के अनुष्ठानों से आई।[47] महाभारत में 'रूपोपजीवन' शब्द का उल्लेख हुआ है। रूपोपजीवन छाया के द्वारा प्रदर्शित किया जाने वाला नाट्य है।[48]

महाभारत के आख्यान की बहुरंगी छटाएं राजस्थानी तथा गुजराती जनजातियों के आख्यानों में मिलती है। गुजरात की जनजातियों में महाभारत की कथा उनके उपास्य

[41] बलदेव उपाध्याय. सं.सा. का इतिहास, पृ. 106, उद्धृत
राजमूलो महाप्राज्ञ! धर्मो लोकस्य लक्ष्यते।
स्याद्यदि राजा न पालयेत।। अध्याय (महा. उ. प. 168)
[42] न नः स समिति गच्छेद् यश्चे न विर्वपेत् कृषिम्। (महा. उद्यो. 36/31), पृ. 106
[43] आदि पर्व 176.16 पृ. 166
[44] वहीं, पृ. 167
[45] वही, पृ. 167
[46] वही, पृ. 168
[47] वही, पृ. 169
[48] रूपोपजीवनं जालमण्डपिकेति प्रसिद्धम्। (टीकाकार नीलकण्ठ)

वासुकि नाग की कथाओं से जुड़ जाती है। उत्तर भारत में इस परम्परा की अत्यन्त अह्लादकारी प्रस्तुति छत्तीसगढ़ की पंडवानी में देखने को मिलती है।[49] दक्षिण भारत में महाभारत तथा पौराणिक आख्यानों पर लोकगीतों की रचना होने लगी। इन लोकगीतों को मलयालम परम्परा में पाट्टु तथा मणिप्रवालम् इन दो कोटियों में रखा जाता है। एक्षुथाच्चन, जिन्हें मलयालम साहित्य का व्यास कहा जाता है, के महाभारतम् किलिपाट्टु का कथकलि तथा केरल के अन्य नाट्यरूपों के नाट्य प्रस्तुतियों की परम्परा के उद्भव एवं विकास में अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। महाभारत में उल्लेखित सूत जाति के लोग ही केरल पहुँचकर चाक्यार (अभिनेताओं) के रूप में अवतरित हुए। कूटियाट्टम् कूति तथा अट्टम् इन दो शब्दों के योग से बना है। कूतु का अर्थ है शारीरिक चेष्टा, नृत्य या अभिनय। इस तरह कूटियाट्टम् का अर्थ है एक नट का अभिनय के साथ–साथ कथा कहना।[50]

मणिप्रवालम् के मंच पर भी महाभारतीय प्रसंगों में नलोपाख्यान अत्यन्त ही लोकप्रिय है। छवित्तुनाटकम् केरल में प्रचलित नृत्यनाट्य है। इसमें चेंचुमलै शिव का नाम है, जो एक किराती से विवाह करते हैं। यह महाभारत के किरातार्जुनीय प्रसंग से प्रभावित प्रतीत होता है। इसी प्रकार थेरुकुत्तु वीथी नाटक है। इसमें महाभारत की कथाओं का अभिनय होता है। इन नाट्यों में सर्वाधिक उल्लेखनीय है– 'द्रौपदी अम्मान कुतु।'[51] यक्षगान में भीष्मविजय, कर्णार्जुनकलह, द्रौपदीप्रताप, कृष्णपारिजात, अभिमन्युकलह आदि नाटक महाभारत के ही विभिन्न प्रसंगों पर आधारित हैं।[52] इस तरह महाभारत से प्रभावित भारतीय कला परम्परा आज भी सम्पूर्ण भारत में अनवरत प्रचलित है।[53]

25.4.1 शिल्पकला पर महाभारत का प्रभाव

महर्षि वेदव्यास ने सूत को बुद्धिसम्पन्न, वास्तुविद्याविशारद, स्थपति, सूत्रधार तथा पुराणों का प्रवचन करने वाला कहा है।[54] टीकाकार नीलकण्ठ ने इस तरह सूत को शिल्पग्रामवेत्ता कहा है। महाबलिपुरम् में पाँचों पाण्डवों के शिलारथ को विश्व में कला की धरोहर मानी जाती है। यहीं पाशुपतास्त्र की प्राप्ति के लिए तपोनिष्ठ अर्जुन का विशालतम विग्रह अन्यत्र दुर्लभ है, अस्तु, दर्शनीय है। इसी तरह राष्ट्रकूट काल में निर्मित एल्लोरा का कैलासनाथ मन्दिर भी महाभारत के शिल्पालंकार हेतु प्रसिद्ध है। कनार्टक में बादामी के संग्रहालय में हरिवंशपुराण की कथाओं के शिल्पांकन है। इसी के समीप पट्टदकल्लु के मन्दिर के स्तम्भों पर महाभारत की कथा के अनेक दृश्य अंकित हैं। होयसल साम्राज्य के बेल्लूरू तथा हेलीबेडु में भी भित्तियों या शिलालेखों पर महाभारत की कथाएँ उत्कीर्ण हैं। इसमें भीष्म की शरशय्या, सभापर्व में वर्णित द्यूतादि दृश्य दर्शनीय हैं। इसी प्रकार विजयनगर साम्राज्य के काल में निर्मित मन्दिरों पर भी महाभारत ने अपनी अमिट छाप छोड़ी है।[55]

---

[49] वही, पृ. 170
[50] वही, पृ. 170
[51] वही, पृ. 175
[52] वही, पृ. 180
[53] विस्तृत अध्याय हेतु पढ़े सं.सा. का समग्र इतिहास, राधावल्लभ त्रिपाठी
[54] स्थपतिर्बुद्धिसम्पन्नो वास्तुविद्याविशारदः।
इत्यब्रवीत् सूत्रधारो सूतः पौराणिकस्तथा।। महाभारत
[55] राधावल्लभ त्रिपाठी, सं.सा. का समग्र इतिहास, पृ. 180–81

25.5 सारांश

महाभारत का सांस्कृतिक महत्त्व अपने प्रतिपाद्य विषयों की सम्पन्नता, विविधता, बाहुल्यता, पात्रों की विशिष्टताओं आदि के कारण हमारे दिन–प्रतिदिन के व्यवहार से गहरे रूप से जुड़ा है। वास्तव में महाभारत को मानव–जीवन के समस्त पक्षों व भावों को व्यक्त करने वाला ग्रन्थ कहा जा सकता है। यह वस्तुतः मनोविज्ञान का ग्रन्थ है, जैसे भाव वैसे पात्र यहाँ चित्रित हैं।[56] महाभारत के सभी पात्र अपने आप में विलक्षण हैं। ऐसा अद्भुत चरित्र अन्यत्र मिलना दुर्लभ है। इसलिए महाभारत न सिर्फ भारतीय संस्कृति अपितु मानवीय संस्कृति का सर्वाङ्गीण चित्र प्रस्तुत करता है जिससे प्रेरणा लेकर मानव अपने जीवन को दिशा दे सकता है। तभी तो हर्ष चरित में बाणभट्ट ने कहा है कि महाभारत की कथा जगत्–त्रय के सभी पक्षों का स्पर्श करती है।[57] वहीं राष्ट्रकवि दिनकर कहते हैं कि महर्षि वेदव्यास ने देश के विभिन्न भागों में फैली हुई विचारधाराओं और संस्कृतियों को इस प्रकार गुम्फित कर दिया कि महाभारत सारे देश की जनता का कण्ठहार बन गया।[58]

25.6 शब्दावली

महाभारत : महाभारत का विकास क्रमशः जय, भारत तथा महाभारत के रूप में विविध उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अलग–अलग अवसरों पर हुआ। जय संहिता में 8840 श्लोक थे। व्यास ने इसे वैशम्पायन को सुनाया था। द्वितीय अवस्था में जय का विस्तार भारत के रूप में हुआ जिसमें 24000 श्लोक थे। भारत का प्रवचन वैशम्पायन ने जनमेजय के समक्ष नागयज्ञ के आधार पर किया था। भारत को महाभारत या शतसाहस्रत्री संहिता में सांत्ति नामक ऋषि ने शौनकादि ऋषियों को नैमिषारण्य (जनपद सीतापुर उ.प्र.) में सुनाया अब एक लाख से अधिक श्लोकों का यह महाकाव्य अपनी विशालता व महत्ता के कारण 'महाभारत' के रूप में प्रतिष्ठित हो गया– महत्त्वाद् भारवत्वाच्च महाभारतमुच्यते। (महा. 1/1/274)

सांस्कृतिक– सम् उपसर्ग पूर्वक $\sqrt{कृ}$ धातु में 'क्तिन्' प्रत्यय के योग से संस्कृति शब्द निष्पन्न होता है और संस्कृति में पुनः ठक् प्रत्यय के योग से सांस्कृतिक शब्द का निर्माण होता है जिसका सामान्य अर्थ है उस समाज, जाति या राष्ट्र के उदात्त संस्कार।

धर्म– $\sqrt{धृ}$ धातु में धञ् प्रत्यय से निष्पन्न होकर धर्म शब्द बना है जिसका अर्थ है धारण करना। आचारः परमो धर्मः। यतोऽभ्युदय निःश्रेयस्सिद्धिः सः धर्मः। धारणाद् धर्म इत्याहुर्धर्मो धारयते प्रजाः। (महा. कर्णपर्व 69/58)

मनुस्मृति में कहा गया है–

धृति क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।।

[56] किं कवेस्तस्य काव्येन सर्ववृत्तान्तगामिनी।
कथेव भारती यस्य न व्याप्नोति जगत्त्रयम्।। बाणभट्ट हर्ष चरित 1/9
[57] वही., 1/9
[58] दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, पृ. 161–162

मोक्ष– मोक्ष तो महाभारत का मुख्य प्रतिपाद्य विषय है। अन्य विषय तो अंगमात्र है। वैराग्य, संन्यास, धार्मिक जीवन इत्यादि का लक्ष्य मोक्ष ही है जिसमें आत्मा की सांसारिक बन्धनों से आत्यान्तिक निवृत्ति हो जाती है और वह अपने मूल स्वरूप में स्थित हो जाता है। अनुगीता में मोक्ष को 'अमृत' कहा गया है।

25.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. भारतीय संस्कृति, डॉ. प्रीति प्रभा गोयल, राजस्थानी ग्रन्थागार जोधपुर, 2004.
2. संस्कृति के चार अध्याय, श्री रामधारी सिंह दिनकर, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2012.
3. संस्कृत साहित्य का इतिहास, आचार्य बलदेव उपाध्याय, शारदा मन्दिर, वाराणसी, 1968. (अष्टम् संस्करण)
4. संस्कृत साहित्य का इतिहास, वाचस्पति गैरोला, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1997.
5. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, डॉ. कपिलदेव द्विवेदी, रामनारायणलाल विजयकुमार, इलाहाबाद, 2020.
6. संस्कृत साहित्य का इतिहास, डॉ. उमाशंकर शर्मा 'ऋषि', चौखम्बा भारती अकादमी, वाराणसी, 2014
7. प्राचीन भारतीय साहित्य, प्रथम भाग, द्वितीय खण्ड, विण्टरनिल्स, अनु. डॉ. रामचन्द्र पाण्डेय, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1966.
8. संस्कृत साहित्य का समग्र इतिहास (प्रथम खण्ड), डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, न्यू भारतीय बुक कॉरपोरेशन, दिल्ली, 2008.
9. संस्कृत साहित्य की रूपरेखा, चन्द्रशेखर पाण्डेय एवं शान्तिकुमार नानूराम ब्यास, साहित्य निकेतन, कानपुर, 1970.

25.8 बोधप्रश्न

1. संस्कृति से आप क्या समझते हैं?
2. महाभारत के सांस्कृतिक महत्त्व की विवेचना कीजिए।
3. महाभारत के निर्माण–क्रम को स्पष्ट करते हुए महाभारत की महत्ता पर प्रकाश डालिए।

25.9 बोध प्रश्न के उत्तर

1. संस्कृति के व्युत्पत्ति परक अर्थ को लिखे।

   संस्कृति को विभिन्न विद्वानों को उद्धृत कर परिभाषित करें।

   फिर कुछ उदाहरण प्रस्तुत कर अपने उत्तर को और अधिक स्पष्ट करें।

2. सर्वप्रथम 'संस्कृति' शब्द को स्पष्ट करें।

   तत्पश्चात् महाभारत का भारतीय संस्कृति में स्थान को स्पष्ट करें

   तत्पश्चात् संस्कृति के विभिन्न आयामों में स्पष्ट करते हुए महाभारत के सांस्कृतिक महत्त्व के प्रश्न का उत्तर दिया जाना चाहिए।

3. महाभारत के निर्माण क्रम को अर्थात्

   जय, भारत और महाभारत के क्रम को बताया जाना चाहिए।

   तत्पश्चात् पूर्व पाश्चात्य के विद्वानों के महाभारत के सन्दर्भ में दिए गए मतों को निरूपति करते हुए महाभारत की महत्ता पर प्रकाश डालना चाहिए।